।। पंचम इकाई ।।

महर्षि स्थापत्यवेद

वास्तु परिचय :–

अपने यहां किसी भी कार्य को प्रारंभ करने के लिये, उस कार्य को निर्विध्न समाप्ति के लिए, मंगलाचरण को अत्यंत आवश्यक माना है। इसका उद्देश्य जहॉ एक ओर विभिन्न देवी–देवता का आर्शीवाद प्राप्त करना है तो दूसरी और इसका उद्देश्य चित्त की एकाग्रता से भी है। सारा कार्य केवल ईश्वर की कृपा, गुरू के आर्शीवाद के ही फलस्वरूप हो रहा है, रचनाकार तो केवल माध्यम है।

वास्तुशास्त्र के लगभग सभी ग्रंथों में सबसे पहले मंगलाचरण है। इसमें देवता की, गुरू की स्तुति की गई है। जैसे आज के समय में भी, जब हम स्कूल (पाठशाला) या कॉलेज (विश्वविद्यालय) में अध्ययन करते हैं तो सामान्य रूप से सबसे पहले प्रार्थना (जिसे हम प्रेयर के नाम से जानते है) की जाती है, इससे मन एकाग्र होता है, चित्त की वृत्तियॉ जो की बहिर्मूखी थी, बाहर की ओर थी, एकाग्र होती है, उसके बाद अध्ययन प्रारम्भ किया जाता है।

यहां भी इस विश्वकर्मा प्रकाश ग्रन्थ में सबसे पहले मंगलाचरण, जिसमें गुणों के नायक गणेश जी की स्तुति, उसके बाद विद्या की देवी सरस्वती तथा उसके पश्चात महेश्वर की स्तुति है–

जयति वरदमूर्तिर्मङ्गलं मंगलानां जयति सकलवंद्या भारती ब्रह्मरूपा।

जयति भुवनमाता चिन्मयी मोक्षरूपा दिशतु मम महेशो वाङ्मयः शब्दरूपम्।। वि.क.प्र.01।

श्री गणेश जी को नमस्कार करते हैं, जिनकी ऐसी प्रतिमा (मूर्ति) है, जो वरदान को देने वाली है, जो मंगलों के मंगल है, (ऐसे) गणों के स्वामी (मालिक) की जय हो। सबके द्वारा वन्दना की जाने वाली ब्रह्मरूप (अव्यक्तरूपा) सरस्वती की जय हो। चेतन तथा मोक्षरूप, तीनों भुवनों की माता की जय हो। वाङ्गमय महेश्वर मुझें शब्दरूप ज्ञान प्रदान करें अर्थात् अपनी विचार को शब्दों में व्यक्त करने की क्षमता प्रदान करें (दे)।

ग्रन्थ का उद्देश्य :–

वास्तु शास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया।।5।।

विश्वकर्मा कहते हैं कि लोक के भले की इच्छा से वास्तुशास्त्र को कहता हूँ।

व्याख्या – यहॉ भी शास्त्र का उद्देश्य स्पष्ट होता है कि लोक कल्याण के लिए, जगत के कल्याण के लिए वास्तुशास्त्र का निर्माण किया गया है। जैसे आयुर्वेद स्वास्थ्य पंक्ति की रक्षा करना है। वैसे ही वास्तु का उद्देश्य यह है कि लोग किस प्रकार के घर में रहें कि प्रकृति का पोषणकारी ऊर्जा उन्हें प्राप्त हो तथा वे चारों पुरूषार्थ को प्राप्त कर सकें।

चार पुरूषार्थ– धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष

धर्म – अपने स्वधर्म का पालन करना

अर्थ – स्वधर्म का पालन करते हुए अर्थ (धन) कमाना

काम– स्वधर्म से कमाए हुए धन से कामना की पूर्ति करना

मोक्ष – जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करना। मोक्ष (निष्काम भाव को, साक्षी भााव को प्राप्त करना, उनमें स्थित होना)

वास्तु पुरूष की उत्पत्ति :–

कई बार किसी बात को कहने के लिए, अपने यहॉ शास्त्रों में, पुराणों में कथानक या कहानी का सहारा लेते है। कई बार किसी बात के गोपनीय तरीके से कहने के लिए भी सांकेतिक भाषा का प्रयोग करते है तथा कहानी के माध्यम से उस सत्य को कह भी देते हैं। अभी तीसरे श्लोक में भी देखा कि यह वास्तुशास्त्र बड़े रहस्यों से भरा है केवल प्रज्ञा के सहारे ही इसे पार किया जा सकता है।

वैदिक वाड.्मय में देवता के माध्यम से ऊर्जा को व्यक्त किया गया है, देवता शब्द दिव् धातु से बना है, जिसका अर्थ है प्रकाश अर्थात् ऊर्जा है अर्थात् देवता शब्द ऊर्जा का प्रतीक है।

जिस देवता का जो नाम है वह उस प्रकार की ऊर्जा को प्रकट करता है, बताता है। जितने भी देवता हैं, वे सब ऊर्जा ही हैं। देवता के विभिन्न नाम, देवता की ऊर्जा को प्रकट करते हैं, अभिव्यक्त करते है। पूरे वैदिक वाड़गयम में जो भी नाम है वही गुण है। जो संज्ञा है वह विशेषण है। जो नाम है वह अपने गुण को प्रकट करता है।

जैसे गणेश का अर्थ गण तथा ईश। ईश का अर्थ है स्वामी, मालिक, पति। तो गणेश का अर्थ हुआ गणों के स्वामी। उमेश का अर्थ हुआ उमा का स्वामी, मालिक, उमा का पति। रमेश का अर्थ हुआ रमा का पति आदि, आदि। इस महत्वपूर्ण तथ्य को ध्यान में रखने से हम ग्रन्थ में लिखी बातों को समझने में आसानी होगी।

वास्तुशास्त्र में किसी भूखण्ड या प्लाट पर उत्पन्न ऊर्जा के विषय में अध्ययन करने के लिए उस ऊर्जा की एक पुरूष के समान कल्पना की गई है–

पुरा त्रेतायुगे ह्यासीन्महाभूतं व्यवस्थितम्।

स्वाप्यमानं शरीरेण सकलं भुवनं ततः।। वि.क.प्र.06।

पहले त्रेतायुग में एक महाभूत व्यवस्थित हुआ उसने अपने शरीर में सभी भुवन को सुला दिया (वह सारे भुवन में व्याप्त हो गया, आच्छादित हो गया) अर्थात् वास्तु का क्षेत्र सारा भुवन है)।

व्याख्या – युग चार बताए गए है – सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलयुग। इनमें सतयुग के बाद त्रेतायुग में वास्तुपुरूष की उत्पत्ति बताई गई है, अर्थात् उससे पहले सतयुग में वास्तुपुरूष नहीं था, सतयुग में सतोगुणी चेतना प्रधान थी। त्रेतायुग में जब रजोगुणी चेतना प्रधान रूप से प्रकट होने लगी तब वास्तुपुरूष का जन्म हुआ तथा वास्तु के विपरीत या गलत निर्माण होने पर दोषों का लगना शुरू हुआ।

देवताओं का ब्रह्माजी की शरण में जाना :–

तं दृष्ट्वा विस्मयं देवा गताः सेन्द्रा भयावृताः।

ततस्ते भयमापन्ना ब्रह्माणं शरणं ययुः।। वि.क.प्र. 07।।

इस प्रकार देखकर देवता आश्चर्य को प्राप्त हुए तथा अन्य के साथ ब्रह्माजी की शरण में गए।

भूतभावन भूतेश महद्भयमुपरिस्थतम्।

क्व यास्यामः क्व गच्छामो वयं लोकपितामहः।। वि.क.प्र. 08।।

हे भूतों को उत्पन्न करने वाले, भूतों के स्वामी (मालिक), बड़ा भय सामने उपस्थित हुआ। हे लोक के पिमामह (लोकों को पैदा करने वाला) अब हम कहॉ जाएँ ?

व्याख्या – पंचमहाभूत के सृष्टि का निर्माण हुआ है, वह व्यक्त हुई है। ये पंचमहाभूतः– आकाश, तेज, वायु, जल व पृथ्वी है। उनको उत्पन्न करने वाले ब्रह्माजी से देवता इस प्रकार पूछते है कि अब हम कहॉ जाएँ ?

मा कुर्वन्तु भयं देवा विगृह्यैतन्महाबलम्।

निपात्याधोमुखं भूमौ निर्विशंका भविष्यथ।। वि.क.प्र. 09।।

ब्रह्मा (सृजन के देवता) ने कहा कि तुम डरो मत, उस महाबली को पकड़कर भूमि पर नीचे की मुख करके गिरा दो तथा शंका से रहित हो जाओ।

ततस्तैः क्रोधसन्तप्तैर्गृहीत्वा तं महाबलम्।

विनिक्षिप्तमधो वक्रं स्थितास्तत्रैव ते सुराः।। वि.क.प्र. 10।।

ऐसा सुनकर क्रोध से सन्तप्त देवताओं ने उस महाबली को पकड़ लिया तथा उसे नीचे मुख करके गिरा दिया उस पर स्थित होकर अर्थात् उसके पर बैठ गए।

व्याख्या – यहॉ देवता के लिए सुराः शब्द का प्रयोग किया गया है सुर अर्थात् लय, ताल, अर्थात् जो कुछ प्रकृति (नेचर स्वभाव) के साथ लय में है, ताल में है, वह देवता है।

तमेव वास्तु पुरूषं ब्रह्मा समसृजत्प्रभुः।

कृष्णपक्षे तृतीयायां मासि भाद्रपदे तथा।। वि.क.प्र. 11।।

शनिवारे भवेज्जन्म नक्षत्रे कृतिकासु च।।

योगस्तस्य व्यतीपातः करणं विष्टि संज्ञकम्।। वि.क.प्र. 12।।

भाद्रपद महीने के कृष्ण पक्ष की तीज स्थित को वास्तु पुरूष का जन्म हुआ। शनिवार, कृतिका नक्षत्र, व्यतीपात (बड़ा उपद्रव) योग तथा विष्टिकरण में वास्तु पुरूष का जन्म हुआ।

भद्रान्तरेऽभवजन्म कुलिके तु तथैव च।

क्रोशमानं महाशब्दं ब्रह्माणं समपद्यत।। वि.क.प्र. 13।।

चराचरमिदं सर्व त्वया सृष्टं जगत्प्रभो।

विनापराधेन च मां पीडयन्ति सुराभृशम्।। वि.क.प्र. 14।।

उसकी (वास्तु पुरूष) की उत्पत्ति भद्रा के बीच में, कुलिक (करीगर) मुहूर्त में हुई। वह बहुत अधिक शब्द करता हुआ, ब्रह्माके सामने उपस्थित हुआ। उनसे कहा कि हे प्रभु, (ऐश्वर्यवान) आपने, यह सारे चर (चलने वाला) व अचर (स्थिर) जगत् की रचना की है, किन्तु बिना अपराध के ये देवतागण मुझे कष्ट देते है।

वरं तस्मै ददौ प्रीतो ब्रह्मालोक पितामहः।

ग्रामे वा नगरे वापि दुर्गे वा पत्तनेऽपि वा।। वि.क.प्र. 15।।
प्रासादे च प्रपायां च जलोद्याने तथैव च।
यस्त्वां न पूजयेन्मर्त्यो मोहाद्वास्तुनर प्रभो।। वि.क.प्र. 16।।
आश्रियं मृत्युमाप्नोति विध्नस्तस्य पदे पदे।
वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति।। वि.क.प्र. 17।।

लोकपितामह ब्रह्मा ने उसके वचन सुनकर प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि जो कोई ग्राम या नगर या किला या बन्दरगाह, महल और प्याऊ, जलाशय व बगीचा के बनवाते समय शुरूआत में, हैं वास्तुपुरूष जो कोई तुझे मोह के कारण न पूजे, वह दरिद्रता को तथा मृत्यु को प्राप्त होगा तथा उसे हर कदम पर बाधाओं का सामना करना पड़ेगा एवं भविष्य में तेरा आहार बनेगा।

व्याख्या — यहॉ हमें स्पष्ट रूप से पता चलता है कि किसी भी नये निर्माण कार्य को प्रारम्भ करने के पहले, भलीभॉति विचार करके कि, वास्तु को किस प्रकार नियमों के अनुसार बसाना चाहिए? किस दिशा में क्या निर्माण करना चाहिए? कितनी जगह, किस दिशा में खाली जगह छोड़ना चाहिए? आदि अर्थात् सारी योजना (प्लानिंग) न करने पर वह दोषकारक होता है।

इसी प्रकार चेतना के स्तर में गिरावट से वास्तु के दोषों का लगना प्रारंभ हुआ, वर्णन हमें समरांगण सूत्रधार के भवनजन्म कथा नामक अध्याय में मिलता है—

समरांगण सूत्रधार, राजा भोज द्वारा, ग्यारहवीं सदी में लिखा गया, वास्तुशास्त्र का, अत्यंत ही महत्वपूर्ण तथा प्रामाणिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ के अध्याय छह में सहदेवाधिकार यानी भवन जन्म कथा का वर्णन किया गया है। जिसमें हमें वर्णन मिलता है कि, कैसे पहले देवता व मनुष्य साथ—साथ रहते थे, वे क्षुधा, पिपासा (भूख—प्यास) एवं दुखों से रहित, स्थिर यौवन वाले थे। फिर देवताओं की अवज्ञा से उनकी अर्थात् मनुष्यों की वृत्ति में, चेतना में ह्रास (गिरावट) होने लगा। उन्हें क्रमशः भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, वर्षा व शरीर की अन्य आवश्यकता सताने लगी। तब उन्हें भवन की आवश्यकता महसूस हुई तथा वे घर बनाकर रहने लगे।

इससे हमें, यह पता चलता है कि जब तक मनुष्य की चित्त वृत्ति में ह्रास नहीं हुआ, वे देवता के साथ रहते थे, भूख, प्यास व शरीर की अन्य आवश्यकताओं से मुक्त थे। चित्त की वृत्ति के ह्रास, चेतना के स्तर में गिरावट के बाद, उन्हें शारीरिक आवश्यकताऍ सताने लगी एवं शीत, गर्मी, वर्षा आदि से बचने के लिए भवन की आवश्यकता महसूस हुई और वे भवन बना कर रहने लगे।

एकोऽग्रजन्मा वर्णोऽमिन् वेदाऽभूदेक एव च।
ऋतुर्वसन्त एवैकः कुसुमायुधबान्धवः ।।स.सू. 06—12।।
रूपश्रुतसुखैश्वर्यभाजस्ते निखिला अपि।
समत्वान्नाभवत् तेषामुत्तमाधममध्यमा।।सु.सु. 06—13।।
न खेटनगरग्रामपुर क्षेत्रखलादिकम्।

न दंशमशकक्रव्याद्भयं वा न ग्रहादि च।। स.सू. 06–14।।

न तो खेट, नगर, ग्राम, पुर, क्षेत्र या खल आदि थे। न दंश से (डसने से), न मच्छर से, न ही मांस खाने वालों से कोई भय था। न ही ग्रह आदि का कोई भय था।।14।।

कल्पद्रुमाप्तभोगानां न तेषां प्रभूरप्यभूत।

पुरास्मिन् भारते वर्ष तेषां निवसतामिति।। स.सू. 06–15।।

जगाम सुबहुः कालः सुरैः सार्ध सुरश्रियाम्।

अज्ञाततत्प्रभावानां सहसंवाससंभवा।। स.सू. 06–16।।

अथैषामभवद् दैवादवज्ञा त्रिदशान् प्रति।

अपूज्यमानस्ते पूज्या सर्वेऽप्यखिलवेदिनः।। स.सू. 06–17।।

परिक्लेशैकमूलानि द्वन्द्वान्यासन् पृथक्पृथक।

ततः स्वक्लृप्तमर्यादोच्छेदिष्वेष्वजितात्मसु।। स.सू. 06–29।।

अविनीतेष्वभाग्येषु स शालिस्तुषतामगात्।

प्रवृद्धरजसां तेषां सा पुण्यश्लोकता गता।। स.सू. 06–30।।

यहॉ पर खेट, नगर, पुर, क्षेत्र, खल आदि की कोई व्यवस्था न थी और यहॉ पर दंशों से, मशकों से अथवा राक्षसों से कोई भय न था। ग्रहों, नक्षत्रों की कोई परवाह नहीं करता था। राजस प्रकृति के प्रकोप के कारण, उनकी पुण्यश्लोकता भी चली गई। इस प्रकार से हमने देखा कि चेतना के स्तर में गिरावट के बाद ही वास्तु दोषों का लगना प्रारम्भ होता है या लगते हैं अतः अपनी चेतना का स्तर हमेशा ऊँचा होना चाहिए। चेतना का स्तर ऊँचा उठाने के लिए शास्त्र के अनुसार आचरण करना, ध्यान करना, चित्त व मन को निर्मल करना व रखना चाहिए। साक्षी भाव में स्थित रहना, सब कुछ ईश्वर की कृपा है, ईश्वर का प्रसाद है। ईश्वर का कार्य है यह मानकर कार्य करना चाहिए।

वास्तु शास्त्र की परम्परा :–

हमारे यहां शास्त्र को एक परम्परा से प्राप्त होते है। गुरू–शिष्य परम्परा। इस शास्त्र के आदि गुरू शम्भु है, शिव है। उनसे एक परम्परा के द्वारा यह ज्ञान विश्वकर्मा जी पास आया, अब वह इसे अपने शिष्य को कह रहे हैं। इसमें एक बात और स्पष्ट होती है कि जिस शास्त्र का वर्णन अब प्रारम्भ हो रहा है वह एक विशाल परम्परा रखता है, एक गौरवशाली परम्परा रखता है अब शिष्य भी उस परम्परा से जुड़ रहा है, वह भी इस गौरवशाली परम्परा का अंग बन रहा है। उस पर इस परम्परा को आगे बढ़ाने का दायित्व है। अब इस परम्परा के अनुसार ही उसका आचरण व्यवहार आदि भी हो। इस श्लोक में वास्तु शास्त्र की परम्परा का उल्लेख किया गया है–

कथयामि मुनिश्रेष्ठ श्रृणु वैकाग्रमानसः।

यदुक्तं शम्भुना पूर्व वास्तुशास्त्रं पुरातनम्।। 3।।

हे मुनि (मनन करने वाले) श्रेष्ठ (उत्तम), तम एकाग्र (जिसका एक ही अग्र हो) चित्त (ऐसा चित्त जिसका सारा ध्यान एक ही विषय पर केन्द्रित हो) होकर सुनो। यह प्राचीन वास्तुशास्त्र पहले शम्भु (जो स्वयं उत्पन्न हुआ हो, महादेव) ने कहा है। सबसे पहले तो यह कहा कि हे मुनि श्रेष्ठ अर्थात् मनन करने वालों में श्रेष्ठ तुम एकाग्र चित्त से, मन से सुनो। यहॉ शास्त्र सुनना, समझने के लिए कहा कि शास्त्र को जानने की उत्सुकता, जिज्ञासा रखने वालो तुम एकाग्र वृत्ति से, मन से इस शास्त्र को सुनो। एकाग्र चित्त से क्यों सुनों ? क्योंकि यह शास्त्र अनेक भेदों से, रहस्यों से युक्त है। यह साधारण शास्त्र नहीं है इनमें अनेक मर्म छुपे हुए हैं। समरांगण सूत्रधार में भी इसी बात को इस प्रकार कहा है कि –

अप्रज्ञेयं दुरालोकं गूढार्थ बहुविस्तरम्।
प्रज्ञापोतं समारूह्या प्राज्ञो वास्तुनिरं तरेत्।।15।।88।।स.सू.

यह वास्तुशास्त्र अप्रज्ञेय, दुरालोक, गूढ़ अर्थ वाला, बहुत ही विस्तारित है। इस वास्तु समुद्र को प्रज्ञारूपी (प्रज्ञा–निर्मल–चेतना) जहाज पर चढ़कर, निर्मल चेतना वाला स्थपति (वास्तु शास्त्री) ही पार कर सकता है, समझ सकता है। इस प्रकार से यह भी कहा गया है कि चेतना एकाग्र हो, निर्मल हो। वास्तुशास्त्र की परम्परा का आगे वर्णन इस प्रकार है–

पराशरः प्राह वृहद्रथाय वृहद्रथः प्राह च विश्वकर्मणे।
स विश्वकर्मा जगतः हिताय प्रोवाच शास्त्रं बहुभेदयुक्तम्।।4।।

उसके बाद पराशर ने यह वास्तुशास्त्र बृहद्रथ को कहा, वृहद्रथ में विश्वकर्मा (देवताओं के शिल्पि) को तथा विश्वकर्मा ने यह वास्तुशास्त्र, संसार क हित की इच्छा से अनेक भेद (रहस्य) से भरे हुए इस वास्तुशास्त्र को कहा। इस प्रकार से वास्तु शास्त्र (विश्वकर्मा प्रकाश) की परम्परा का वर्णन है।

वास्तु की आवश्यकता

वास्तु से स्वाभाविक विकास :–

सभी मनुष्य, सेखी होना चाहते है, शान्ति चाहते हैं। यह मानव का स्वभाव है, उसका एक प्राकृतिक गुण है। कैसे ? पानी का स्वाभाविक गुण है शीतलता, यदि पानी को आग पर कुछ रख दिया जाए तो वह पानी गर्म हो जाता है, लेकिन आग से हटा लेने पर, वह पानी अपना स्वाभाविक धर्म शीतलता होने के कारण धीरे–धीरे ठण्डा हो जाता है।

ठीक उसी प्रकार मनुष्य या कोई व्यक्ति का स्वाभाविक गुण या प्रतिभा प्रकट कैसे हो, इसके लिए सबसे आवश्यक व पहली शर्तें हैं कि वह ऐसे वातावरण, ऐसे परिवेश, ऐसी जगह पर रहे, जो उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति या गुणों के अनुरूप हो, ताकि उस व्यक्ति के सहज गुण प्रकट हो सकें, वह विकास कर सके, उसे उसके कार्य में रूकावट का अनुभव न हो, प्रकृति या नेचर, उसे पूरा–पूरा सहयोग दें।

वास्तु से प्रगति :–

हम अपने स्वयं के जीवन में देखते हैं कि कभी–कभी हमारे कार्य, विशेषरूप से तथा थोड़े से श्रम से ही सफल हो जाते हैं, जबकि कभी अत्याधिक श्रम करने पर भी उस कार्य में उतनी सफलता नहीं मिलती, कारण क्या हो सकता है। जिस व्यक्ति मकान में रहता है, जहां पर काम करता है, उसका, इन बातों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यह सब उसके निर्णय लेने की क्षमता को प्रभावित करते है।

पंच ज्ञानेन्द्रिय :–

हमारी पांच ज्ञानेन्द्रियॉ है, जिनसे हम ज्ञान ग्रहण करते हैं। वे इन्द्रियॉ इस प्रकार हैं– ऑख, नाक, कान, जीभ व त्वचा। हमें जो ज्ञान गहण करते हैं, उसका लगभग 80 से 85 प्रतिशत भाग हम ऑख से ग्रहण करते हैं। ऑख से हम आकार व रंग देखते हैं। काम से हम सुनते हैं। नाक से हम सूंघते हैं। त्वचा से हम स्पर्श करते हैं ठण्डा गर्म आदि का अनुभव करते हैं। जीभ से हम स्वाद लेते हैं। जिस स्थान पर हम रहते हैं, जहॉ कार्य करते हैं, उस स्थान का आकार व रंग यदि हमारी आवश्यकता व मन के अनुकूल हो (तो नेत्र इन्द्रिय सन्तुष्ट हो जाएगी), उस स्थान पर, मन के अनुकूल ध्वनि हो (तो कर्ण इन्द्रिय सन्तुष्ट हो जाएगी), गन्ध हो (तो घ्राणेन्द्रिय सन्तुष्ट हो जाएगी) तथा उस स्थान का तापमान आदि (एवं बैठक आदि की व्यवस्था नरम हो) हमारे अनुकूल हो (त्वचा अनुकूलता अनुभव करेगी, स्पर्श इन्द्रिय सन्तुष्ट होगी) इस प्रकार, हमारी पॉचों ज्ञानेन्द्रियॉ सन्तुष्ट हो जाएगीं। इन्द्रियों के सन्तुष्ट होने पर मन प्रसन्न होगा। जिससे वह (मन) शीध्रता से तथा सही (उचित) निर्णय लेगा (करेगा) निर्णय सही हो, सही समय पर हो तो जिस लक्ष्य को निर्धारित किया हो, जो कार्य सोचा है, उसे प्राप्त करने में आसानी होती है। लक्ष्य प्राप्त करने से, सफलता करने से, उत्साह बढ़ता है, अर्थ अर्थात् धन की प्राप्ति होती है, जिससे समृद्धि आती है। धर्म से कमाया गया अर्थ या धन, अपने साथ सुख व शान्ति लाता ही है। जिससे व्यक्ति का उत्तरोतर विकास होता है। जिससे, वह सन्तुष्ट होकर सबके साथ मिलजुलकर, भाई चारे का व्यवहार करता है तथा बदले में भी वहीं पाता है, सीधे शब्दों में कहें, तो व्यवहार कुशल होता है, झुंझलाता नहीं है, कड़वा नहीं बोलता है। सब उसके विकास में सहायक होते हैं। परिवार और अधिक खुश रहता है, परिवारजनों की इच्छाओं की पूर्ति होती है, जिससे वो भी खुश रहते है।

यह सब, इस पर निर्भर करता है कि आपके निर्णय सही हो व सही समय पर हों। निर्णय सही कैसे हो, यह उस प्रकार के परिवेश, मकान आदि पर निर्भर करता है, जिसमें व्यक्ति निवास करता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसकी दिनचर्या कैसी है, उसका भोजन क्या है, वह किस प्रकार के लोगों के सम्पर्क में आदि।

उपरोक्त सभी बातें ही वास्तुशास्त्र का विषय है, वास्तु का क्षेत्र है। इसलिए व्यक्ति वास्तु के अनुरूप निर्माण में रहे, उसके नियमों के अनुसार आचरण करे तो व्यक्ति अपने जीवन में बाधारहित सफलता पा सकता है।

शुभ वास्ते के प्रभाव

– सुख
– समृद्धि
– उत्तम स्वास्थ्य
– समस्यारहित जीवन
– लक्ष्य की प्राप्ति
– उन्नति के अवसर
– प्रगति में प्रकृति का सहयोग
– मित्रता
– भाईचारा
– सुचारू जीवन
– उत्तरोत्तर सुखी
– धर्म, अर्थ, काम सहित मोक्ष की प्राप्ति।

अशुभ वास्तु के दुष्प्रभाव

– अशान्ति
– समस्याएँ
– शत्रुता
– जीवन संकट
– उन्नति में रूकावट
– दुःखी जीवन
– बाधाएँ
– रोग
– अस्वस्थता
– अस्थिरता आदि

घर की उपयोगिता

किसी भी शास्त्र को प्रारंभ करने से पहले उस शास्त्र की महिमा का प्रतिपादन किया जाता है। यहां इस शास्त्र का विषय वास्तुशास्त्र है तथा वास्तुशास्त्र में भी मुख्य रूप से विषय गृह है अतः यहाँ घर की महिमा का प्रतिपादन इस श्लोक में किया गया है–

अब्रह्मभुवानाल्लो का गृहास्थाश्रमाश्रिताः।
यतस्तस्माद् गृहारम्भप्रवेशसमयं ह्यहम् ।।2।।

(विश्वकर्मा जी कहते है कि) ब्रह्मा से भुवन तक अर्थात् सृजन तक, जितने भी लोक हैं वे सभी गृहस्थ आश्रम पर आश्रित है। (चूंकि गृहस्थाश्रम इतना महत्वपूर्ण है) इसलिए मैं गृह को कब बनवाना शुरू करना चाहिए तथा उस बने हुए घर में कब प्रवेश सिद्ध करना चाहिए ? उसके समय को कहता हूँ।

व्याख्या – हमारे यहाँ एक सामान्य परम्परा है कि किसी भी शास्त्र या विषय को शुरू करते हैं तो सबसे पहले उस शास्त्र या विषय की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं। यहां इस विश्वकर्मा– प्रकाश या वास्तुशास्त्र का विषय वास्तु है, घर है, अतः ग्रंथ में सबसे पहले ग्रह की महिमा को प्रतिपादित किया गया है।

ब्रह्म (अव्यक्त, जहां से सारा निर्माण (सृष्टि) की शुरूआत हुई है) से भुवन तक, सारे लोक गृहस्थाश्रम पर ही आश्रित है। आश्रम चार हैः– ब्रह्मचर्य (आयु जन्म से 25 वर्ष), गृहस्थाश्रम (25 से 50 वर्ष की आयु तक, वानप्रस्थ 51 से 75 वर्ष की आयु तक तथा सन्यास 76 से जीवन पर्यन्त तक) इन सभी लोगों का जीवन गृहस्थाश्रम पर ही आश्रित है, यह बताया गया है ˙ एक बालक भी गृहस्थ (माता–पिता) पर निर्भर रहता है। गृहस्थ के माता–पिता भी गृहस्थ (पुत्र) पर निर्भर रहते हैं तथा सन्यासी भी गृहस्थ पर निर्भर रहता है, अतः चारों आश्रम में सबसे महत्वपूर्ण आश्रम गृहस्थ है।

इस प्रकार से यहाँ गृहस्थाश्रम की महिमा प्रतिपादित की गई है। गृहस्थ आश्रम की महत्ता के साथ–साथ घर की महत्ता प्रतिपादित हो जाती है।

राजवल्लभ आदि अन्य ग्रन्थों में भी ग्रन्थ के प्रारम्भ में घर की महिमा का वर्णन किया गया है–

स्त्रीपुत्रादिक भोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदं

जन्तूनां लयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम्।

वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते।

गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुधाः श्रीविश्वकर्मादयः।

जिस घर में स्त्री, पुत्र आदि का भोग और सुख मिलता है, जिस घर में धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति होती है, जो घर प्राणी का विश्राम स्थल है, इतना ही नहीं ठण्ड, वर्षा और गर्मी के भय का, जिससे निवारण होता है और जहाँ बावड़ी, कुआँ का सुख तथा देवमंदिर का अखिलपुण्य मिलता है, यह सब घर में ही मिलता है इसलिए विश्वकर्मा आदि सभी देवता प्रथमतः घर की इच्छा करते हैं।

अध्याय – 5 में हम देखेंगे कि वास्तुपुरूष शरीर पर 45 देवता विराजमान है। ये 45 देवता, 45 अलग–अलग ऊँर्जा को बताते हैं, कि वास्तु के किस भाग या दिशा में किस प्रकार की ऊँर्जा है। उस देवता या ऊँर्जा के अनुसार वहाँ निर्माण करना चाहिए।

एक और शब्द श्लोक में आया है जिसकी व्याख्या हो बहुत बडी जो जाएगी, परंतु सांकेतिक रूप से शब्द तो कह दें, कहा है कि हे वास्तुपुरूष जो व्यक्ति तुझे मोह से न पूजे। तो शब्द आया है मोह। यह जो मोह शब्द है उसका अर्थ जब शब्द कोश में देखते है तो पाते है कि मोह का अर्थ है चेतना की हानि, निःसंज्ञा, बेहोशी आदि–आदि। मोह जो है वह सर्वदा अनिष्टकारक है। श्री मदभगवतगीता प्रारम्भ ही अर्जुन के मोह संबंधित प्रश्न से होती है। अर्जुन कहता है कि

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।

यच्छ्रयः स्यान्निश्रिवतं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्न्म्।।7।।2।।

कायरतारूप दोश के उपहत हुए स्भाव वाला (तथा) धर्म (स्वधर्म) के विशय में मोहित चित्त हुआ (मैं) आपसे पूंछता हूँ (कि) जो निश्चित कल्याणकारक (साधन) हो, वह मेरे लिए कहिए, (क्योंकि) मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण में हूँ, मुझको शिक्षा दीजिए। तो पूरी गीता की शुरूवात इस प्रश्न से होती है कि अर्जुन मोहित है, भगवान श्री कृष्ण बराबर उपदेश देते रहते हैं, हर दृष्टिकोण से पक्ष को रखते हैं, बताते हैं, समझाते हैं, पूरी गीता सुनाने के पश्चात भगवान अर्जुन से पूंछते हैं कि हां भई अर्जुन अब बताओ–

कच्चिदेतच्छुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।

कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनज्जय।। 72।।18।।

हे पार्थ। क्या तूने एकाग्रचित से इसका श्रवण किया (सुना) तथा हे धनज्जय क्या तेरा अज्ञान से उत्पन्न मोह नष्ट हो गया। तब अर्जुन कहता है कि

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।

स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।73।।18।।

हे अच्युत। आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया तथा मैनें स्मृति प्राप्त कर ली है, संशय रहित होकर स्थित हूँ, आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि पूरी गीता का फल मोह नाश है। सारे फसाद की, झंझट की जड़ यह मोह है। यह जो मोह है इसका नाश होना अत्यन्त–अत्यन्त आवश्यक है। यहां वास्तु में भी ब्रह्माजी ने वास्तुपुरूष से कहा है कि वास्तुपुरूष जो व्यक्ति तुझे मोह से न पूजे वह भविष्य में नाश को प्राप्त होगा।

इत्युक्तावान्तर्दधे सद्यो देवो ब्रह्माविदांवरः।

वास्तुपूजा प्रकुर्वीत गृहारम्भ–प्रवेशने।।18।।

इतना कहकर ब्रह्मा विदा हो गए। इसलिए घर बनवाना शुरू करते समय तथा प्रवेश के समय वास्तुपूजा करना चाहिए।

द्वाररभिवर्त्तने चैव त्रिविधे च प्रवेशने।

प्रतिवर्षज्ज यज्ञादौ तथा पुत्रस्य जन्मनि।।19।।

व्रतबन्धे विवाहे च तथैव च महोत्सवे।

जीर्णो द्वारे सस्यन्मासे चैव विशेषतः।।20।।

दरवाजे (चौखट) लगाते समय, तीन प्रकार के प्रवेश में, अपूर्व प्रवेशः (नये घर में), सपूर्व प्रवेशः (यात्रा से लौटने के बाद) तथा द्वन्द्वाभय प्रवेशः (पुराने घर को नया बनवाने पर), प्रति वर्ष, यज्ञ में, पुत्र के जन्म दिन पर, जनेऊ संस्कार पर, महोत्सव के समय, जीर्णोद्धार तथा अनाज को इकट्ठा के समय पर वास्तुपूजन को करना चाहिए।

व्याख्या – वास्तुपूजन करने से पूरा घर सकारात्मक ऊर्जा से भर जाता है। जैसे हम प्रति वर्ष दीपावली पर घर की साफ–सफाई करते हैं, रंग करते हैं, कपड़ों को धूप आदि दिखाते हैं, अन्य प्रकार से घर को साफ करते हैं, तमाम कूड़ा–करकट, अटाला आदि व्यर्थ सामान घर से निकाल कर बाहर करते हैं, तो इस प्रकार वास्तुशान्ति करवाने से घर सकारात्मक ऊर्जा से भर जाता है। ऐसा कम से काम वर्ष में एक बार अवश्य करना चाहिए।

वास्तुदोष लक्षण :–

वज्राभिदूषिते भग्ने सर्पचाण्डालवेष्टिते।

उलूकवासिते सप्तरात्रौ काकाधिवासिते।।21।।

मृगाधिवासते रात्रौ गोमार्जाराभिनदिते।

वारणा वादिविरूते स्त्रीणां युद्धाभिदूषिते।।22।।

कपोतकगृहावासे मधूनां निलये तथा।

जो घर बिजली गिरने से दूषित हो, भग्न (टूटा–फूटा) हो, जो घर सॉप व चाण्डाल से घिरा हो, जिसमें उल्लू रहते हों, जिस घर में सात रात्रि से कौआ आदि रहते है। जिस घर में हिरण हो, जिस घर में पालतू जानवर गाय, बिल्ली रात्रि में अधिक आवाज करें (असामान्य रूप से चिल्लाए) हाथी व घोड़े आदि विशेष प्रकार से चिल्लाएं। जो घर, महिलाओं के झगड़े से दूषित हो।

व्याख्या – यहॉ जिस घर में वास्तुदोष होगा, उसमें किस प्रकार के लक्षण होते है, इसका वर्णन किया गया है। इससे हमें वास्तुदोष से दूषित घर का पता लगाने में सहायता मिलती है।

जैसे कोई रोगी, किसी चिकित्सक (डॉक्टर) के पास जब जाता है तो डॉक्टर, उससे बीमारी के लक्षण पूछता है, उसके आधार पर यह निर्धारित करता है कि उसे कौन सी बीमारी है। ठीक इसी प्रकार, इन वास्तु दोष के लक्षण के माध्यम से किसी स्थान पर वास्तुदोष है, यह पता चलता (ज्ञात होता) है।

वास्तुदोष दूर करने के उपाय :–

अन्यै चैव महोत्पातैर्दूषिते शान्तिमाचरेत्।।23।।

इस प्रकार के दोष व अन्य बड़े उत्पाद से दूषित घर में वास्तुशान्ति (पूजा) को करें।

व्याख्या – हमारे यहॉ शास्त्र में एक परम्परा है कि सबसे महत्वपूर्ण बात सबसे पहले ही कह देते हैं। चाहे पतंजलि योग सूत्र हो तो पहले श्लोक में कह दिया ''**योगश्चित्त वृत्ति निरोधः**'' । चित्त की वृत्तियों का रूक जाना योग है। श्रीमद्धगवत्गीता के दूसरे ही अध्यया से ब्रह्मा को उपदेश दे दिया है।

इसी प्रकार यहॉ विश्वकर्मा प्रकाश में सबसे पहले वास्तुदोष के क्या लक्षण हैं ? यह बताने के तुरन्त बाद ही दोष दूर करने का उपाय दे दिया, कह दिया कि ऐसे घर में वास्तुशान्ति को करें। पूरे घर को सकारात्मक ऊर्जा से भर दें, चार्ज करें। इस बात को हम अध्याय पॉच में देखेंगे कि किस प्रकार घर को विभिन्न पदार्थो का हवन कर, सकारात्मक ऊर्जा से भरा जाता है।

वास्तुपूजन के समय विभिन्न देवता का पूजन उनके साथ, अलग – अलग पदार्थ से जब हवन करते हैं तो उससे सारा वातावरण शुद्ध व पवित्र होता है, सकारात्मक ऊर्जा से भर जाता है। इसी को कहते कि वास्तु दोष दूर हो गया।

सारांश :–

विश्वकर्मा–प्रकाश, विश्वकर्मा जी द्वारा लिखा गया वास्तुशास्त्र का प्रमुख ग्रन्थ है, इससे पहले मंगलाचरण, उसके पश्चात गृहस्थ आश्रम की महिमा बताई है। वास्तुशास्त्र शिवती से प्रारम्भ होकर परम्परा के रूप में हमें प्राप्त होता है। वास्तुशास्त्र की उत्पत्ति त्रेतायुग में हुई। प्रत्येक निर्माण कार्य को प्रारम्भ करने से पहले वास्तु के अनुसार योजना (प्लानिंग) करना चाहिए। निर्माण प्रारम्भ करने से लेकर, सभी महत्वपूर्ण कार्य जैसे दरवाजा स्थापित करना व गृहप्रवेश के समय वास्तुशास्त्र करना चाहिए। वर्ष में कम से कम एक बार वास्तुपूजन अवश्य करना चाहिए। किसी घर या स्थान पर वास्तुदोष है, इसका ज्ञान हमें वास्तुदोष के लक्षण के माध्यम से होता है।

अभ्यास (1) :– मंगलाचरण का श्लोक संस्कृत में याद करें, दोहराए।

प्रश्न – आश्रम कितने होते है ? नाम बताइए ?

प्रश्न – चारों आश्रम में सबसे महत्वपूर्ण आश्रम कौन सा है ?

प्रश्न – वास्तु पुरूष की उत्पत्ति किस युग में हुई ?

प्रश्न – वास्तु शास्त्र के परम्परा का वर्णन कीजिए ?

प्रश्न – वास्तु शास्त्र परम्परा कहॉ से आरम्भ हुई ?

प्रश्न – वास्तुशास्त्र का उद्देश्य बताइए ?

प्रश्न – वास्तुपूजन कब करें ?

प्रश्न – वास्तुदोष के लक्षण लिखिए ?

प्रश्न – वास्तुपूजन कब–कब करना चाहिए ?

प्रश्न – वास्तुदोष दूर करने का उपाय लिखिए ?